





तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान ।  
 रागादि प्रकट ये दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन ॥५॥  
 शुभ-अशुभ बंध के फल मँझार, रति-अरति करै निजपद बिसार ।  
 आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान ॥६॥  
 रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय ।  
 याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥७॥  
 इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित्त ।  
 यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥८॥  
 जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव ।  
 अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह ॥९॥  
 धारैं कुर्लिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल नाव ।  
 जे राग-द्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ॥१०॥  
 ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमण छेव ।  
 रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥११॥  
 जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म ।  
 याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान ॥१२॥  
 एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त ।  
 कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥१३॥  
 जोख्याति-लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध-विध देह-दाह ।  
 आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन ॥१४॥  
 ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग ।  
 जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग ॥१५॥

## तीसरी ढाल

(जोगीरासा/नरेन्द्र छन्द)

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिए ।  
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चाहिए ॥  
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो ।  
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारन सो व्यवहारो ॥१ ॥  
परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है ।  
आप रूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है ॥  
आप रूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई ।  
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥२ ॥  
जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो ।  
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानो ॥  
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो ।  
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दृढ प्रतीति उर आनो ॥३ ॥  
बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है ।  
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है ॥  
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी ।  
द्विविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥४ ॥  
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी ।  
जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिव मगचारी ॥  
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी ।  
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी ॥५ ॥  
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महन्ता ।  
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता ॥  
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै ।  
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै ॥६ ॥

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं ।  
 पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसू जाके हैं ॥  
 जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी ।  
 तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी ॥७ ॥  
 सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानों ।  
 नियत वर्तना निस-दिन सो, व्यवहारकाल परमानों ॥  
 यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा ।  
 मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥८ ॥  
 ये ही आतम को दुख कारण, तातैं इनको तजिये ।  
 जीव प्रदेश बंधे-विधि सौं, सो बन्धन कबहुं न सजिये ॥  
 शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये ।  
 तप-बल तैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥९ ॥  
 सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी ।  
 इह विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ॥  
 देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो ।  
 ये हु मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो ॥१० ॥  
 वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो ।  
 शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो ॥  
 अष्ट अंग अरु दोष पचीसौं, तिन संक्षेपहु कहिये ।  
 बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये ॥११ ॥  
 जिन-वच में शंका न धार, वृष भव-सुख-वांछा भानै ।  
 मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ॥  
 निज-गुण अरु पर-औगुण ढाँके, वा जिन धर्म बढ़ावै ।  
 कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-पर को सुदिढावै ॥१२ ॥  
 धर्मी सों गौ-बच्छ प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावै ।  
 इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै ॥



तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माहीं ।  
मति-श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मन तैं उपजाहीं ॥  
अवधि मनपर्जयज्ञान, दो हैं देश प्रतच्छा ।  
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा ॥३॥  
सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता ।  
जानैं एकै काल प्रकट, केवलि भगवन्ता ॥  
ज्ञान-समान न आन, जगत में सुख को कारण ।  
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण ॥४॥  
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे ।  
ज्ञानी के छिन माहिं त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते ॥  
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ ।  
पै निज आतम-ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ॥५॥  
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व-अभ्यास करीजै ।  
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै ॥  
यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनिवौ जिनवानी ।  
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी ॥६॥  
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै ।  
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ॥  
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानो ।  
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो ॥७॥  
जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जैहैं ।  
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं ॥  
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै ।  
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै ॥८॥  
पुण्य-पाप फल माहिं, हरख बिलखौ मत भाई ।  
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई ॥



## पाँचवी ढाल

बारह भावना

(चाल छन्द)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगन तैं वैरागी ।  
वैराग्य उपावन माई, चिंतो अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥  
इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै ।  
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव-सुख ठानै ॥२॥  
जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी ।  
इन्द्रीय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥  
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ।  
मणि मन्त्र-तन्त्र बहु होई, मरतैं न बचावे कोई ॥४॥  
चहुँ गति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं ।  
सब विधि संसार-असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा ॥५॥  
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक हि तेते ।  
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥  
जल-पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला ।  
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥७॥  
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली ।  
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥८॥  
जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई ।  
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे ॥९॥  
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना ।  
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥  
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना ।  
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥



समता सम्हारैं श्रुति उचारैं वन्दना जिनदेव को ।  
नित करैं, श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को ॥  
जिनके न न्हौन न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन ।  
भू माहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकासन करन ॥५ ॥  
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अल्प निज-पान में ।  
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज-ध्यान में ॥  
अरि-मित्र महल-मसान कंचन-काँच निन्दन-श्रुतिकरन ।  
अर्घावतारन असि-प्रहारन में, सदा समता धरन ॥६ ॥  
तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा ।  
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव-सुख-कदा ॥  
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब ।  
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७ ॥  
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।  
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भाव को न्यारा किया ॥  
निज माहिं निज के हेतु, निज कर आपको आपै गहौ ।  
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रहौ ॥८ ॥  
जहँ ध्यान-ध्याता-ध्येय को, न विकल्प वच-भेद न जहाँ ।  
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ ॥  
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दसा ।  
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा ॥९ ॥  
परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै ।  
दृग-ज्ञान-सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विषै ॥  
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तैं ।  
चित्पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुणकरण्ड, च्युति पुनि कलनि तैं ॥१० ॥  
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लहौ ।  
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कहौ ॥  
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दहौ ।  
सब लख्यौ केवलज्ञान करि, भविलोक कों शिवमग कहौ ॥११ ॥

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन माहिं अष्टम भू बसैं ।  
 वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥  
 संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये ।  
 अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥  
 निज माहिं लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित भये ।  
 रहि हैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परिणये ॥  
 धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया ।  
 तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया ॥१३॥  
 मुखयोपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।  
 अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं ॥  
 इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ ।  
 जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ ॥१४॥  
 यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये ।  
 चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये ॥  
 कहा रच्यो पर-पद में न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै ।  
 अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि दाव मत चूको यहै ॥१५॥

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख ।  
 कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ॥  
 लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द-अर्थ की भूल ।  
 सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पाओ भव-कूल ॥१६॥